इकाई 41 धर्मनिरपेक्षता : सिद्धांत और व्यवहार

इकाई की रूपरेखा

41.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- "धर्मनिरपेक्षता" शब्द के उद्भव और पृष्ठभूमि के बारे में बता सकेंगे
- धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना का विवेचन कर सकेंगे
- राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का विकास बता सकेंगे
- यह भी बता सकेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने धर्मनिरपेक्ष रास्ता किस तरह चुना
- भारतीय धर्मनिरपेक्षता के वैधिक आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।

41.1 प्रस्तावना

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान प्रचलित विभिन्न प्रवृत्तियों और धाराओं के बारे में आप पढ़ चुके हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उत्पन्न और विकसित बहुत से विचारों को स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनी-अपनी दिशा खोजनी थी। इस इकाई में हम ऐसे ही एक महत्वपूर्ण विचार "धर्मनिरपेक्षता" की चर्चा करेंगे। धर्मनिरपेक्षता जो रूप ग्रहण कर रही है वह आज का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है।

इसी विचारणीय विषय को केन्द्र में रखते हुए यह इकाई धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के

उद्भव को पाश्चात्य विश्व में तलाशने का प्रयास करती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्मनिरपेक्षता का विकास कैसे हुआ, और अब भारत में यह क्या रूप ग्रहण कर रही है, ये दूसरे पक्ष हैं, जिन पर इस इकाई में विचार किया गया है।

41.2 धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

धर्मनिरपेक्षता जीवन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य जगत के औद्योगिक बाज़ार-समाजों में उत्पादन, वितरण और खपत के व्यापक सामाजिक संगठनों की पैदाइश था।

प्रारंभ में धर्मनिरपेक्षता के विचार की वकालत कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा (निजी रूप से) की गई थी। यूरोप में सामन्तवादी विरोधी विद्रोहों के प्रबल होने के दौरान नए उभरते बुर्जुआ-वर्ग (उद्योग व्यापार आदि गतिबिधियों में लगे उद्यमी तथा अन्य व्यवसायों में लगा मध्यवर्ग) ने (एक वर्ग के बतौर) इस विचार का समर्थन किया, और इसे आगे बढ़ाया। यह बुर्जुआ-वर्ग मानता था कि आधुनिक उद्योग और कृषि-अर्थव्यवस्था की भाँति ही, आधुनिक राष्ट्र राज्य की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संगठनों के पिछड़े सिद्धान्तों से नियंत्रित नहीं की जा सकतीं। पूर्व पूंजीवादी समाज का सांस्कृतिक गढ़ धर्म था, इसलिए धर्म ही बुर्जुआ बुद्धिवादी आलोचना का लक्ष्य बना।

इस तरह वैध विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता को नया महत्व मिला। जैसे ही बुर्जुआ-वर्ग के हाथ में थोड़ी राजसत्ता आई वैसे ही धर्मनिरपेक्षता को आधुनिक राज्य के संवैधानिक दर्शन का दर्जा मिला, और राज्य की नीति के रूप में संस्थात्मक वैधता प्राप्त हुई। ऐसा इसलिए भी हुआ क्योंकि किसी भी राज्य की उदार और लोकतांत्रिक पहचान के लिए धर्मनिरपेक्षता एक आवश्यक गुण बन गई थी। आधुनिक राज्य निर्माण की उन परिस्थितियों में लोगों की अपनी-अपनी धार्मिक सम्बद्धताओं के बावजूद समाज में उभरते विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच पारस्परिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। यह ऐतिहासिक आवश्यकता ही बाद में राज्य की नीति और प्रशासन के सार्वजनिक और राजनीतिक गुण के रूप में संस्थापित हुई। इस तरह धर्मनिरपेक्षता का संस्थानीकरण हुआ। इससे धार्मिक संघर्ष को टालने की आवश्यकता पैदा हुई। यही वजह थी कि 19वीं शताब्दी के यूरोप के अधिकांश दार्शनिकों ने राज्य द्वारा जनता या उसके किसी भी वर्ग पर किसी भी धर्म के लादे जाने के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किए। राज्य का धर्म (चर्च) से अलगाव आधुनिक राज्य व्यवस्था का एक आधारभूत सिद्धांत बन गया। उदाहरण के लिए, जब अमरीकी संविधान में पहले संशोधन के रूप में यह जोड़ा गया कि "कांग्रेस किसी भी धर्म की स्थापना के लिए या किसी भी धर्म के स्वतंत्र पालन को रोकने के लिए कोई कानून नहीं बनाएगी" तो यह दृष्टिकोण अमरीका में एक आधारभूत संवैधानिक वैधिक गुण के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

धर्मनिरपेक्षीकरण की यह प्रक्रिया सभ्य समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक आधार को नए ऐतिहासिक परिवर्तनों की वैज्ञानिक भावना के अनुसार सुधारने के लिए भी आवश्यक थी। इसी प्रकार, धर्मनिरपेक्ष राज्य का संगठन, बुर्जुआ राजसत्ता के वैधिक सैद्धांतिक आधार के लिए एक महत्वपूर्ण मापदण्ड बन गया। धर्मनिरपेक्षतावादी विचारधारा की आवश्यकतां को धर्म से नहीं, बल्कि नए उभरते वर्ग से ताकत मिली। इसके अलावा, आधुनिकता और आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति सर्वव्यापी थी। विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र में इसने लोकतांत्रिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया। सामन्तवाद विरोधी विद्रोहों से भरे उत्तर-पुनर्जागरण काल के पश्चिम यूरोपीय संदर्भ में आधुनिक होने का अर्थ था धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना। इसमें मानव स्वतंत्रता का विस्तार भी अन्तर्निहित था। इसने एक व्यक्ति और व्यक्ति समूह को संप्रभुता प्रदान की—यानी स्वयं उसे (या उनको) ही उसके (या उनके) भाग्य का स्वामी बना दिया। ऐसा हर क्षेत्र में हुआ, चाहे वह उत्पादन का क्षेत्र हो, सामाजिक परिवर्तन का या राज्यतंत्र अथवा राजनीतिक संस्थाओं का। मानव इतिहास और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माता के रूप में ईश्वर को नहीं', बल्कि स्वयं जन या जन समुदाय को मान्यता दी गई। इस प्रकार आधुनिकता,

सामन्तवाद विरोधी और परम्परा विरोधी दृष्टिकोण का प्रतीक बन गई। धर्मनिरपेक्षता नई आधुनिक बैद्धिकता का कारगर सैद्धांतिक हथियार बन गई। यह सब इस तरह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के निजी जीवन में भी धर्म और अन्धविश्वास के बजाय विज्ञान और बुद्धि को महत्व मिलना शुरू हो गया।

41.3 धर्मनिरपेक्षता का उदय

"धर्मनिरपेक्ष" और "धर्मनिरपेक्षीकरण" शब्द हमारे यहाँ अंग्रेज़ी शब्द "सेक्यूलर" (Secular) और "सेक्यूलराइज़ेशन" (Secularization) के रूपान्तरण हैं। इन अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग यूरोप में तीस वर्ष तक चले युद्ध की समाप्ति पर सन् 1648 में पहली बार हुआ और तभी इनको बौद्धिक विचारधारात्मक लोकप्रियता मिली। इनका प्रयोग चर्च की सम्पति को राजा के नियंत्रण में हस्तांतरित किए जाने के संदर्भ में हुआ। फ्रांस की क्रांति के बाद 2 नवम्बर, 1798 को टैलीरेन्ड (एक वयोवृद्ध फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ) ने फ्रांस की राष्ट्रीय सभा (फ्रेन्च नेशनल असेम्बली) में घोषणा की कि गिरजाघरों से संबंधित सारी वस्तुएँ राष्ट्र के अधिकार में हैं। काफी बाद में, 1851 में जार्ज जेकब होलियोग (George Jacaobe Holyoaake) ने "सेक्यूलरिज़्म" (धर्मनिरपेक्षतावाद) शब्द गढ़ा।

धर्मनिरपेक्षतावाद ने राजनीतिक दर्शन का स्वरूप 1850 में ही ग्रहण किया। इसे राजनीतिक और सामाजिक संगठन का एकमात्र तार्किक आधार घोषित किया गया। यूरोप के अधिकांश परिवर्तनवादी बुद्धिजीवियों और सुधारकों ने इसे प्रगति का आंदोलन करार दिया। जब 13 अप्रैल, 1853 को राबसपियर (Robespierre) के सम्मान में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में लुई ब्लॉक (Louis Blank), नादौ (Nadaud) कुसुली (Kussuli) तथा अन्य उग्र प्रवक्ताओं ने भाग लिया तो धर्मनिरपेक्ष आंदोलन शुरू हो गया। इस सभा में अभिजात, पादरी, राजनीतिज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल थे। राजनीतिक आंदोलन के इसी चरण में होलियोक (Holydoke) ने धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भौतिक साधनों द्वारा मानव कल्याण को बढ़ावा देने वाले और दूसरों की सेवा को जीवन का आदर्श बनाने वाले साधन के रूप में की। साथ ही, होलियोक ने सभ्य समाज के धार्मिक आधार पर ही प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा :

> "ऐसे रूढ़िवादी धर्म से एक ग़रीब व्यक्ति को क्या लेना-देना है, जो अपनी शुरूआत ही उसे (गरीब व्यक्ति) एक दीन हीन पापी बता कर करता है, और अन्त उसे एक असहाय ग़ुलाम बना कर करता है। एक गरीब व्यक्ति स्वयं को एक हथियारबन्द दुनियां में पाता है, जहां शक्ति ही ईश्वर है और गरीबी बेड़ी है।"

होलियोक के लेखन में धर्मशास्त्र की जो आलोचना की गयी है उस में इसीलिए समाजवादी मानवतावाद का मूल परिवर्तनवादी तत्व पाया जाता है। फिर भी, स्वयं धर्म विरोधी (नास्तिक) होना ज़रूरी नहीं है। लेकिन चार्ल्स ब्राडलाफ (Charles Bradlaugh) ने, जिसने 1860 के बाद से धर्मनिरपेक्ष आंदोलन को बहुत अधिक प्रभावित किया, ज़ोर देकर कहा कि एक धर्मनिरपेक्षतावादी को कट्टर निरीश्वरवादी (नास्तिक) होना चाहिए। यह दृष्टिकोण उसी के समान था जो बाद के दिनों में बहुत से मार्क्सवादियों, समाजवादियों और साम्यवादियों ने अपनाया।

41.4 धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप

"धर्मनिरपेक्षता" और "धर्मनिरपेक्षीकरण" शब्द, यूरोप और उत्तरी अमरीका के सभ्य समाजों में पिछले कई दशकों में जो कुछ होता रहा था, उसके वैचारिक निर्धारण के परिणामस्वरूप गढ़े गए थे। इस तरह ये शब्द, व्यापक और जटिल समाजों की राजनीतिक पुनर्व्यवस्था की विचारधारात्मक या सैद्धांतिक अभिव्यक्ति थे और इन समाजों के

औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा बुर्जुआकरण के परिणाम थे। हालांकि धर्मनिरपेक्षता का उदय पश्चिमी उदार समाजों में हुआ था, फिर भी इन समाजों में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया अधूरी और आंशिक रही।

41.5 धर्मनिरपेक्ष राज्य और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की आवश्यकता

वैधिक धर्मनिरपेक्ष राज्य और विचारधारा को स्थापित करना आधुनिक राष्ट्र राज्य की एक आवश्यकता बन गया था। उदाहरण के लिए बोदिन (Bodin) ने तर्क दिया :

> "जब दो या अधिक धर्म पहले से मौजूद हों...........तो राज्य द्वारा धार्मिक एकरूपता लागू करने का प्रयास न केवल निरर्थक, बल्कि निरर्थक से भी बुरा साबित होता है। ऐसा करने का अर्थ होगा गृह युद्ध को जन्म देना और राज्य को कमज़ोर बनाना।"

पश्चिम में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना रातों-रात नहीं हो गई थी। ऐसा समाज में व्यापक रूप से मौजूद धर्मनिरपेक्ष सामाजिक भावना की अनिवार्य परिणति के रूप में हुआ था। वास्तव में, आधुनिक पश्चिमी जगत में धर्मनिरपेक्ष राज्य का विकास, सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रगति का परिचायक था। एक बड़ी सीमा तक राज्य का धर्मनिरपेक्षीकरण सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण के बाद हुआ। धर्मनिरपेक्षता की भावना उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, और अन्ततः बाज़ार क्षेत्र में मौजूद थी। बाज़ार-अर्थव्यवस्था के विनियमन के लिए धर्मनिरपेक्ष, कानून और राजनीति की ज़रूरत थी। तात्पर्य यह है कि आधुनिक पाश्चात्य राजनीति के इतिहास में, एक विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया, वह प्रक्रिया थी जिसमें सभ्य समाज, राज्य, और इसकी समग्र संस्कृति के ढांचे में एक प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन निहित था। इस प्रक्रिया के तहत ही समाज और राजनीति में बहुलवाद (Pluralism) का उदय हुआ।

> सार रूप में, इस सामाजिक परिवर्तन को धर्म और धर्मशास्त्रीय व्यवस्था की जकड़ से राज्य की मुक्ति (या अलगाव) के रूप में चित्रित किया जा सकता है। इसका यह अर्थ भी है कि एक सभ्य समाज के सार्वजनिक सामाजिक जीवन में बुद्धिसंगत, विज्ञानसम्मत, गैर धार्मिक यानी धर्मनिरपेक्षता को प्रभुखता प्राप्त हो गई थी, जबकि धर्म एक व्यक्ति या समुदाय के चुनाव पर निर्भर, नितांत संकुचित निजी सीमा तक सिमट कर रह गया था।

आधुनिकता, धर्मनिरपेक्षीकरण और धर्मनिरपेक्षता का यह प्रगतिशील विचारधारात्मक अर्थ आज भी यथावत है।

41.6 धर्मनिरपेक्षता का अर्थ और परिभाषा

पूर्ववर्ती व्याख्या से यह स्पष्ट है कि "धर्मनिरपेक्ष", "धर्मनिरपेक्षराज्य" और "धर्मनिरपेक्षता" जैसे शब्द ऐसे समाज या राज्य की पहचान कराते हैं जिसमें राजनीति, प्रशासन और सार्वजनिक सामाजिक जीवन का धर्म से पूरी तरह अलगाव होता है। "सैक्यूलर" (धर्मनिरपेक्ष) शब्द का शब्दकोषीय अर्थ उन तत्वों से जुड़ा है जो आध्यात्मिक नहीं हैं, या जिनका चर्च (धर्मस्थान) से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरह एक राज्य, उसकी नीति और उसकी समग्र राजनीतिक संस्कृति का धर्मनिरपेक्ष चरित्र इस बात से तय होता है कि वे धार्मिक संस्कृति के मकड़ जाल की जकड़ से किस सीमा तक मुक्त हैं। इसी तरह, समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण को दैनिक जीवन में, यहां तक कि लोगों के निजी जीवन में, धर्म के असंगत होते जाने से नापा जा सकता है। उदाहरण के लिए, किसी विशेष क्षेत्र या देश के लोगों को धार्मिक निहित स्वार्थों और धार्मिक विचारों के नाम पर एक राजनीतिक

शक्ति के रूप में न उभारा जा सके और न संघठित (Mobilized) किया जा सके, तो इस क्षेत्र या देश विशेष के समाज को स्पष्टतः धर्मनिरपेक्ष नागरिक संस्कृति वाला समाज कहा जा सकता है। इसी प्रकार किसी देश की सत्ता, राज्य और समाज को जकड़ में लेने वाले सामाजिक आर्थिक संकट को सुलझाने के लिए गैर धार्मिक समाधान खोजती है, तो इसकी राजनीतिक संस्कृति को भी धर्मनिरपेक्ष कहा जा सकता है।

धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया कई तत्वों से निर्धारित होती है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के उभरने की प्रकृति, उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियों की विशिष्टताएं, राज्य के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास का स्तर आदि सामन्ती प्रतिक्रिया को पराजित करने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। (धर्मनिरपेक्षता का प्रसार सामन्ती व्यवस्था के टूटने से जुड़ा हुआ है) अतः यूरोप और उत्तरी अमरीका में जल्दी विकसित हो जाने से पूंजीवाद सामन्ती व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में काफी हद तक सफल रहा, जब कि तीसरी दुनियां के देशों में पूंजीवाद का विकास अपेक्षाकृत देर से हुआ, इसलिए यहां यह सामन्ती व्यवस्था को यूरोप की तरह झटका नहीं दे सका।

इसके अतिरिक्त, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, धर्मनिरपेक्ष साहित्य और धर्मनिरपेक्ष इतिहास लेखन की भूमिका भी ग़ैर धार्मिक अर्थों में राष्ट्र और राष्ट्रीय विकास को परिभाषित करने में मदद करती है। इस तरह "धर्मनिरपेक्षीकरण" को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा समाज और संस्कृति के क्षेत्रों को धार्मिक संस्थाओं और प्रतीकों से मुक्त कराया जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह लगाइए।
   आधुनिकता का मानना है कि :
   i) ईश्वर सार्वभौम स्वामी है,
   ii) मशीन सार्वभौम स्वामी है,
   iii) एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह सार्वभौम स्वामी है,
   iv) इनमें से कोई भी नहीं।

2) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह लगाइए।
   औद्योगीकरण, शहरीकरण और आधुनिक राज्य की स्थापना :
   i) को धर्मनिरपेक्षता के उदय के साथ जोड़ा जा सकता है,
   ii) का धर्मनिरपेक्षता से कोई संबंध नहीं है,
   iii) को धर्मप्रधान समाजों की शुरूआत से जोड़ा जा सकता है,
   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं।

3) "धर्मनिरपेक्ष" शब्द से आप क्या समझते हैं, लगभग 50 शब्दों में बताइए।

....

....

....

....

....

41.7 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का विकास

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का विकास उपनिवेशवाद और पारम्परिक व्यवस्था की दमनकारी संस्थाओं के विरुद्ध दुहरे संघर्ष की पृष्ठभूमि में हुआ।

41.7.1 पारम्परिक समाज की बाधाएं

भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से पूर्व, और शुरू होने के बाद भी, परम्परावाद की अपनी महत्वपूर्ण जगह बनी रही।

भारतीय सामाजिक जीवन में सक्रिय धर्म और पुनरुत्थानवाद की पारम्परिक ताकतों के प्रबल प्रवाह ने धर्मनिरपेक्षीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बहुत क्षति पहुंचाई। आधुनिकता कभी भी ऐसी प्रभावी सामाजिक ताकत नहीं बन सकी जो भारत के ग्रामीण और शहरी सामाजिक जीवन का रूपान्तरण करने में सक्षम होती। कुल मिलाकर भारत आज भी पारम्परिक समाज बना हुआ है। अधिकांश मामलों में लोगों के जीवन में धर्म का अभी भी पूरा दखल बना हुआ है। फ्रांसीसी विद्वान लुई डयूमोंट (Louis Dumont) के शब्दों में "भारत में धर्म समाज का अंग है।" राजनीति और अर्थनीति न तो यहां स्वायत्त सत्ताएं हैं, और न यही धर्म के साथ उनका विवाद है। वास्तव में, राजनीति और अर्थनीति सिर्फ धर्म से घिरी हुई है, या फिर उसमें फंसी हुई है।

भारत में जाति की राजनीति और सामाजिकी इसका ज्वलंत उदाहरण है। अभी तक धर्म संस्कृति और भारत की प्रभावी राजनीति के बीच कोई प्रमुख दरार या महत्वपूर्ण अलगाव देखने को नहीं मिला है। इस तरह के ऐतिहासिक अलगाव के बिना भारतीय सामाजिक जीवन के मुख्य प्रवाह में धार्मिक संस्कृति को सार्थक तरीके से व्यक्ति का निजी मसला नहीं बनाया जा सका। इसलिए, भारत में नागरिक समाज का धर्मनिरपेक्षीकरण कभी भी सही मायनों में शुरू नहीं हो सका। परिणामतः विरोध में उठती तमाम आवाज़ों के बावजूद, धर्म और राजनीति का गठजोड़ भारतीय राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख लक्षण बना हुआ है।

41.7.2 राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षतावाद

पारम्परिक स्वरूप वाले भारतीय समाज के आधुनिक राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया मात्र एक शताब्दी पुरानी है। ऐतिहासिक अतीत में भारतीय लोगों में राष्ट्रवाद की वैसी भावना का विकास नहीं हुआ था जिसने 19वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप को बदल दिया था। भारत पर विदेशियों की विजय और इसके उपनिवेशीकरण का मुख्य कारण भी विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। भारत की कक्षबद्ध (अलग-अलग खानों में बंटी हुई) संस्कृति और समाज की सभी संस्थाएं राष्ट्रीय एकता की किसी भी भावना के विपरीत जाती थीं। जाति की इस विलक्षण प्रथा पर टिप्पणी करते हुए राजा राममोहन राय ने कहा था:

> "मुझे यह कहते हुए अफ़सोस होता है कि धर्म का वर्तमान स्वरूप जिससे हिन्दू चिपके हुए हैं, उनके राजनीतिक हितों के लिए अनुकूल नहीं है। जाति के विशेष वर्णों और उनके भी असंख्य विभाजन तथा उप-विभाजनों ने उन्हें देशप्रेम की भावना से वंचित कर दिया है।"

भारत की पारम्परिक संस्थाओं में देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावनाओं की ऐतिहासिक अनुपस्थिति का इसके भावी राजनीतिक विकास पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, जब भारतीयों के मन में राष्ट्रवादी भावनाओं का बीजारोपण हुआ तो उन्हें प्रारंभिक बिन्दु से ही चलना पड़ा। स्वयं राष्ट्रवाद (धर्मनिरपेक्षवाद की तरह) एक विचारधारा के रूप में एक हद तक विदेशी आयात था। धर्मनिरपेक्षता की भांति ही राष्ट्रवाद भी केवल कुछ मध्यवर्गीय उदारवादियों तक ही सीमित था। ये प्रारंभिक उदारवादी, हालांकि अपने निजी जीवन में नास्तिक या अज्ञेयवादी (Agnostic) थे, परन्तु राजनीति या सार्वजनिक जीवन में धर्मनिरपेक्ष रुख़ बनाये रखते थे। ऐसा करने में उनका उद्देश्य होता था कि सभी भारतीयों का एक समुदाय बनायें और साथ ही अंग्रेज़ों से रियायतें प्राप्त करें। इस काम की उनकी क्षमता इस बात से तय होती थी कि वे शिक्षित कुलीनों के छोटे से समूह से बाहर, विशाल जन समुदाय का समर्थन (अपने काम के लिए) किस हद तक जुटा पाते हैं। दूसरे शब्दों में, धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवी वर्ग को पारम्परिक राजनीति से टकराना पड़ता था। और यह टकराहट व्यावहारिक राजनीति में बहुत चुनौतीपूर्ण होती है। यानी, कौन परिवर्तन लाएगा, और किसमें, धर्मनिरपेक्ष उदार बुद्धिजीवी वर्ग पारम्परिक धार्मिक लोगों को प्रभावित कर लेगा या स्वयं यह बुद्धिजीवी वर्ग ही पारम्परिक संस्कृति के प्रवाह में बह जाएगा?

41.7.3 प्रारंभिक संघठन (Mobilization) की सीमाएँ

यहां इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कुछ ही वर्षों में पारम्परिक समाज ने राष्ट्रीय संघठन (लामबन्दी) के मानदंड स्थापित करने शुरू कर दिये थे। यानी, लगभग शुरू से ही राष्ट्रवादी राजनीति और राष्ट्रनिर्माण की परियोजना पर साम्प्रदायिक और धार्मिक कट्टरपंथी विचारधाराओं का शिकंजा कसना शुरू हो गया था। उदारवादियों और उनकी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के सामने बालगंगाधर तिलक, अरविंद घोष, लाला लाजपतराय जैसे हिन्दू पुनरुत्थानवादी नेताओं और मुस्लिम पुनरुत्थानवादियों द्वारा शीघ्र ही चुनौतियां खड़ी कर दी गईं। राष्ट्रीय संघठन धर्म और संस्कृति के सवालों पर होना शुरू हो गया। अन्ततः इससे हिन्दू-मूसलमानों के बीच अलगाववाद को बढ़ावा मिला। धर्मनिरपेक्षता (और राष्ट्रवाद) की प्रक्रिया को उस समय और भी अधिक क्षति पहुंची जब राष्ट्रीय संघठन के लिए धार्मिक प्रतीकों और पद्धतियों का इस्तेमाल किया गया। नरमपंथियों के आंग्ल प्रभावित धर्मनिरपेक्ष नेतृत्व ने अपने धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक संकल्प के अनुरूप हिन्दू प्रसंगों और प्रतीकों को कांग्रेस की कार्रवाइयों से बाहर रखने का भरसक प्रयास किया। परन्तु उनका उच्च वर्गीय धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपने आप में ही कांग्रेस के अवरुद्ध विकास का प्रमुख कारण बन गया। इसलिए कांग्रेस की दुविधा और भी जटिल हो गई। कांग्रेस का हिन्दूकरण करने का अर्थ था, कांग्रेस के प्रति पहले से ही शंकालु मुसलमानों को कांग्रेस से दूर करना और राष्ट्रीय संघठन के लिए धर्म का इस्तेमाल न करने का मतलब था कांग्रेस को उसकी मूल कुलीनतावादी नाकारा स्थिति में ले आना।

41.7.4 गांधीवादी आदर्श

आख़िकार राष्ट्रीय संघठन के लिए धर्म और राजनीति में तालमेल बिठाने का काम गांधी जी पर छोड़ दिया गया। गांधी जी ने राजनीतिक आन्दोलन के लिए धर्म की ज़रूरत की खुले रूप से घोषणा की, "जो लोग यह कहते हैं कि धर्म को राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है, वे नहीं जानते कि धर्म का क्या मतलब है।" उन्होंने कहा, "मेरे लिए प्रत्येक छोटी से छोटी गतिविधि भी उसी से नियंत्रित होती है जिसे मैं अपना धर्म मानता हूँ।" और 1920 तक कांग्रेस का नेतृत्व गांधी जी के हाथ में आ गया। इसके साथ ही धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादियों के प्रारंभिक मत का प्रभाव भी समाप्त हो गया।

प्रारंभिक नरमपंथियों (या उदार धर्मनिरपेक्षतावादी) का मानना था कि धार्मिक चेतना की सक्रियता का सर्वाधिक रचनात्मक क्षेत्र सार्वजनिक जीवन के बजाय व्यक्ति का निजी जीवन है। उन्होंने देशवासियों के सामने भारत के भविष्य का एकीकृत और राष्ट्रीय स्वरूप प्रस्तुत किया।

राष्ट्र निर्माण के प्रारंभिक उदार धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत के विरुद्ध गांधी जी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा करने के लिए लोक धर्म की भूमिका को आवश्यक बताया। वे जनता की धार्मिक भावना के सहारे राष्ट्रीय आंदोलन के राजनीतिक आधार को व्यापक बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन का गांधीवादी आदर्श हिन्दू लोकाचारों से गहराई से जुड़ा हुआ था, फिर भी यह धार्मिक बहुलवाद पर आधारित था, जिसमें भारत और विश्व के सभी धर्मों के प्रति समान आदर की भावना निहित थी। उनकी धार्मिक संवेदनशीलता एक सच्ची लोकतांत्रिक प्रकृति से जुड़ी थी। ख़िलाफ़त आंदोलन को उनका समर्थन, और बाद में इस आंदोलन का भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में रूपान्तरण होना, गांधी जी की इसी संवेदनशीलता का उदाहरण है। यही कारण है कि धर्मनिरपेक्षता (या राष्ट्रवाद) के गांधीवादी आदर्श को "संयुक्त धर्मनिरपेक्षता या सभी धर्मों के प्रति आदर या सर्वधर्म सद्भाव के रूप में भी रखा गया है।"

धर्मनिरपेक्षता का यह गांधीवादी स्वरूप गरीबों और अमीरों के बीच शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। आंशिक रूप से यह सफलता इसलिए भी मिली थी कि यह स्वरूप भारत की धार्मिक मूल्य व्यवस्था के पारम्परिक मुख्य प्रवाह पर अत्यधिक निर्भर करता था। गांधी जी की धार्मिक पृष्ठभूमि वैष्णव परम्परा की थी। इस परम्परा ने उन्हें भारत के लोकनायकों से जुड़े प्रतीकों और पुराण कथाओं की प्रत्यक्ष जानकारी दी जिनका इस्तेमाल गांधी जी ने

अपनी राजनीति में किया। उदाहरण के लिए, स्वतंत्र भारत के आदर्श राज्य को उन्होंने "रामराज्य" का नाम दिया। गांधी जी की आम जनता पर निर्भरता ने भी सम्पन्न वर्ग को भयभीत नहीं किया, आंशिक रूप से इसलिए कि उन्होंने अहिंसा और न्यासी सिद्धांत (ट्रस्टीशिप सिद्धांत) का प्रतिपादन किया और वर्ग संघर्ष की किसी भी धारणा तथा निजी सम्पति के समाजीकरण का विरोध किया। इस तरह धर्मनिरपेक्षता के गांधीवादी आदर्श ने राष्ट्रीय आंदोलन पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। यह आदर्श विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों की बहुलवादी राष्ट्रीय पहचान का आधार बन गया। लेकिन हिन्दुत्व के प्रतीकों पर इसकी अधिकाधिक निर्भरता (जैसे कि रामराज्य) ने मुसलमानों के विलगाव (Alienation) को बढ़ावा दिया। धर्म और राजनीति के समन्वय के गांधीवादी आदर्श की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि इसने विभिन्न धर्मों के बीच फर्क को स्वीकार नहीं किया। अगर धर्मों को ही समाज का विधायक तत्व मान लिया जाय तो निश्चित रूप से धार्मिक मतभेद राजनीतिक मतभेद बनकर उभरेंगे। जो धार्मिक रूप से भिन्न हैं वे उन्हीं राजनीतिक सिद्धांतों के सवाल पर एक नहीं हो सकते जो राजनीतिक सिद्धांत स्वयं ही धर्म पर टिके हुए हैं। व्यवहार में इसने और अधिक संघर्षों को बढ़ावा दिया, ऐसे संघर्षों को जिन्हें विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों से पोषण प्राप्त होता है।

41.7.5 आमूल परिवर्तनवादी (Radical) धर्मनिरपेक्षतावाद

प्रारंभिक उदारवादी धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत और गांधीवादी आदर्श के विरोध में, एक अन्य प्रकार का धर्मनिरपेक्ष आदर्श स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उभर कर आया। इसे आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावाद कहा जा सकता है। इस आदर्श के प्रवर्तक वर्ग ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों (जिन्होंने भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास को जन्म दिया था और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी) के कुछ विचारों को स्वीकारते हुए, भारत की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति उनके कुलीनतावादी उच्चवर्गीय दृष्टिकोण को नकार दिया। इन परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों के पास राष्ट्रीय नवोत्थान का वैकल्पिक आर्थिक और राजनीतिक कार्यक्रम था। इनका कहना था कि लोकधर्म और नैतिक पुनरुत्थान की भाषा के स्थान पर वर्ग संघर्ष और सामाजिक समानता की भाषा लायी जानी चाहिए। इन लोगों ने एक समाजवादी, लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष भारत की संकल्पना प्रस्तुत की। उन्होंने यह तर्क भी दिया कि धर्म को भारतीय नागरिकों के केवल निजी जीवन तक ही सीमित रहना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू इस विचार के अग्रणी प्रवक्ता थे। कांग्रेस के बाहर साम्यवादियों ने धर्मनिरपेक्षता के इस मत को भरपूर समर्थन दिया।

बोध प्रश्न 2

1) सही उत्तर पर (✓) चिन्ह् लगाइए।
   गांधी जी और आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों के बीच मुख्य अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :
   i) इन दोनों के बीच अन्तर की बात करना संभव नहीं है।
   ii) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के अलगाव पर ज़ोर दिया जबकि आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों ने धर्म और राजनीति के समन्वय पर ज़ोर दिया।
   iii) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के समन्वय पर ज़ोर दिया जबकि आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षतावादियों ने धर्म और राजनीति के अलगाव की बात कही।
   iv) उपरोक्त में से कोई भी नहीं।

2) गांधी जी ने धर्म और राजनीति के रिश्ते की किस तरह व्याख्या की, इसे लगभग 100 शब्दों में लिखिए। क्या इस संबंध में उनका प्रारंभिक राष्ट्रवादियों से कोई मतभेद था?

....

....

....

....

....

41.8 स्वातंत्र्योत्तर भारत के लिए "धर्म निरपेक्षता का विकल्प (1947-1964)

भारतीय राष्ट्र निर्माण के सन्दर्भ में गांधी जी की प्रतिमा यह थी कि उन्होंने कांग्रेस सोपानिकी (Hierarchy) के अन्दर से अपने उत्तराधिकारी के रूप में सभी नेताओं (जैसे कि सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद आदि) के बीच में जवाहरलाल नेहरू को चुना। गांधी जी जानते थे कि जो चीज़ स्वयं वे राष्ट्र को नहीं दे पा रहे थे वह जवाहरलाल नेहरू दे सकते थे। गांधी जी, नेहरू की नेतृत्व क्षमता और भारत के भविष्य संवारने की उनकी संकल्पना से परिचित थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और इसकी वर्गकतारों (कांग्रेस के अन्दर अलग-अलग वर्गों के लोग) के ढाँचे के भीतर गांधी-नेहरू का संयुक्त नेतृत्व वस्तुतः एक दूसरे का पूरक था।

यह सच है कि जब भारत को आज़ादी मिली तब नेहरू के हाथों में नेतृत्व की बागडोर थी। लेकिन बहुत से मुद्दों पर वे कांग्रेस पार्टी, भारतीय राज्य और भारतीय समाज को भारतीय राज्य व्यवस्था के अपने आदर्श के अनुरूप मोड़ने में अक्षम थे। उदाहरण के लिए, धर्मनिरपेक्षता का ऐसा ही एक मसला था जिस पर वे अपने विचारों के अनुसार नहीं चल सके। धर्मनिरपेक्षता के जिस आदर्श की पैरवी वे शुरू से ही करते रहे थे, उसे क्रियान्वित करने के लिए वे पर्याप्त समर्थन नहीं जुटा सके। यानी वे धर्मनिरपेक्षता का ऐसा वैधिक संस्थात्मक ढांचा खड़ा नहीं कर सके जो राष्ट्र की राजनीति और उसके प्रशासन में धर्म के प्रयोग का निषेध कर पाता। नेहरू की असफलता के कारण बहुत स्पष्ट थे। यह असफलता उनकी निजी असफलता नहीं थी, बल्कि असफलता की वजहें, स्वयं राजनीति में बनी हुई थीं।

41.8.1 साम्प्रदायिकता की समस्या

इसके अलावा, भारत की आज़ादी और विभाजन से पहले और बाद में साम्प्रदायिक हिंसा का जो लावा फूटा उसने रूढ़िवादी संप्रदायवादियों की स्थिति को और भी मज़बूत किया। यहाँ तक कि राष्ट्रपिता महात्मागांधी भी, जिन्होंने राजनीतिक संघठन के लिए लोकधर्म की वैधता को हमेशा सही ठहराया था, कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू आक्रामकता की ताकत के सामने अकेले पड़ गए (और अन्ततः एक हिन्दू धर्मान्ध ने उनकी हत्या कर दी)। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने एक ऐसे राज्य की वकालत की जो केवल हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दी भाषा को प्राथमिकता दे। उन्होंने जो नारा उछाला, वह था—"हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान"। व्यवहारवादी कट्टर हिन्दू भारत में उसी प्रकार का हिन्दू राष्ट्र चाहते थे जैसा कि पाकिस्तान में जिन्ना ने मुसलमानों को प्रदान किया था। इस तरह पाकिस्तान के भय ने भारत में लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं के निर्माण में बाधा पहुँचाई क्योंकि पाकिस्तान का बनना हिन्दू साम्प्रदायिक आन्दोलन को हवा देने का कारण बना। कांग्रेस पार्टी के आन्तरिक और बाहय हिन्दू साम्प्रदायिक दबावों के सामने गांधी जी और नेहरू दोनों का ही नेतृत्व अलग-अलग और कमज़ोर पड़ गया। पटेल तथा उनके जैसे अन्य नेताओं ने खुले आम प्रतिज्ञा की कि जब तक सोमनाथ मन्दिर की भव्यता को पुनः प्रतिष्ठित नहीं कर दिया जाता, वे चैन से नहीं बैठेंगे। इन नेताओं के प्रभुत्व के सामने नेहरू को आमूल परिवर्तनवादी धर्म-निरपेक्षतावाद के अपने आदर्श से पीछे लौटना पड़ा।

चित्र 13 नेहरू, जिन्ना और मांउटबेटन भारत के विभाजन पर विचार विमर्श करते हुए

41.8.2 धर्म-निरपेक्षता का भारतीय आदर्श

इन परिस्थितियों के अन्तर्गत स्वतंत्र भारत के लिए धर्म-निरपेक्षता का जो आदर्श अपनाया गया उसे अधिक से अधिक एक समझौता कहा जा सकता है। यह समझौता कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिकता और आमूल परिवर्तनवादी धर्म-निरपेक्षता के दो अतिवादी विपरीत ध्रुवों को टालकर किया जाना था। अतः विकल्प के रूप में केवल गांधीवादी आदर्श ही सामने था। इस तरह, स्वतंत्र भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप उस गांधीवादी दर्शन के आधार पर ही तय किया गया जो रूढ़िवादी हिन्दू अखण्डता (Monopithioity) और धर्म को आरोपित किए जाने के विरुद्ध बहुलता को प्रश्रय देता था। हिन्दूवादी राज्य व्यवस्था अपनाकर अल्पसंख्यकों का तथाकथित रूप से भारतीयकरण करने का प्रस्ताव भी इस रूप में रद्द कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू और डॉ. भीमराव अम्बेडकर (जो नेहरू की धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना से सहमति रखते थे) के प्रयासों से जो रणनीति तैयार हुई, वह "धार्मिक तटस्थता" (या धर्मनिरपेक्षता) की थी। यह नीति "धार्मिक बहुलवाद" से भिन्न थी क्योंकि धार्मिक बहुलवाद राजनीति में विभिन्न धार्मिक मूल्यों के अधिकाधिक प्रयोग का पोषक होता है, जब कि "धार्मिक तटस्थता" का मतलब है प्रत्यक्ष धार्मिक प्रचार और राजनीति तथा राज्य व्यवस्था में धर्म के प्रयोग से परहेज़ रखना।

अपनी निजी हैसियत से नेहरू ने भारत में लोकतंत्र की संस्था का विकास करने का भरसक प्रयास किया। 1947 से 1964 तक उन्होंने अनेक ऐसे कदम उठाए जो स्वतंत्र भारत को आधुनिकीकरण की ओर ले जाने वाले थे। वे अच्छी तरह जान गए थे कि अपनी अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज का आधुनिकीकरण किए बिना भारत एक आत्मनिर्भर देश नहीं बन सकता। इसलिए उन्होंने धर्मशास्त्र और धर्मतंत्रीय आदर्शों को नकार कर विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्राथमिकता दी। उनके लिए पूजा, उपासना की पद्धतियों की तुलना में स्वास्थ्य और गरीबी के मसले कहीं अधिक वास्तविक महत्व के विषय थे। नेहरू का मानना था कि धार्मिकता भारत के हितों की पहले ही बहुत अधिक क्षति कर चुकी है। लेकिन विभाजन के बाद के राजनीतिक दबावों से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों ने भारत में धर्मनिरपेक्षतावादियों की स्थिति को कमज़ोर बना दिया। नेहरू जानते थे कि पीछे लौटना अपरिहार्य हो गया था, जिसे टाला नहीं जा सकता था। इसलिए धर्म को आंशिक रूप से राज्य से अलग कर दिए जाने के बावजूद, इसे देश के सार्वजनिक राजनीतिक जीवन से अलग नहीं किया जा सका। यही कारण था कि भारत की राजनीतिक संस्कृति साम्प्रदायिक

दंगों के खूनी रंग से रंगी रही। यहां साम्प्रदायिक समस्या का केन्द्र धर्म ज़रूर रहा, मगर एक आस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक राजनीतिक हथियार के रूप में। धर्म के राजनीतिक औज़ार के रूप में इस्तेमाल ने ही भारत में राष्ट्र-निर्माण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बुरी तरह क्षति पहुँचाई।

41.8.3 राजनीति में धर्म की निरन्तरता : एक बड़ी बाधा

देश के राजनीतिक जीवन से धर्म को अलग न कर पाना, स्वतंत्रता के बाद भारतीय धर्मनिरपेक्षता की एक बड़ी असफलता थी। धर्म को व्यक्ति के निजी जीवन तक सीमित रखने के लिए केवल वैधिक प्रावधान करके ही सही तौर पर धर्मनिरपेक्ष संस्था के निर्माण की कार्रवाई को भारत में आगे बढ़ाया जा सकता था। केवल वैधिक शुरुआत से ही आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया गति पकड़ सकती थी। इसी आधार पर ही धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों और परम्पराओं का संस्थानीकरण देश के सामान्य सामाजिक जीवन और राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित कर सकता था और आखिरकार इससे नागरिकों के निजी जीवन में भी धर्म का दखल कम हो सकता था। केवल तभी लोकधर्म के बजाय विज्ञान और बुद्धिजीवी शिक्षा के प्रसार से राष्ट्रनिर्माण किया जा सकता था।

जन विज्ञान (Popular Science) और तर्क के प्रभाव से ही नागरिकों की जीवन दृष्टि को पूर्णरूप से बदला जा सकता है। विज्ञान और तर्क से प्रकृति के कार्य व्यापार की व्याख्या करके प्रकृति और मूल शक्ति के उपयोग की कार्य विधि तैयार की जा सकती है। बीमारियों का उन्मूलन, साफ सुन्दर आवास, जीवन की आधारभूत आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन आदि सभी कुछ मौजूदा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से संभव बनाया जा सकता है। यह धारणा कि आम तौर पर लोग विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग को समझने में सक्षम नहीं होते, वस्तुतः निहित स्वार्थ के लोगों द्वारा पैदा की गई है ताकि वे अपना नियंत्रण बनाये रख सकें। उनका यह नियंत्रण लोगों को विज्ञान से दूर हटाता है। अगर धर्मनिरपेक्षता यहां "विज्ञान जनता के लिए", "जानकारी जनता के लिए", "विज्ञान आत्म-निर्भरता और राष्ट्रीय एकता के लिए" जैसा आंदोलन बन सकती तो साम्प्रदायिकता को इसके अपने गढ़ में ही पराजित किया जा सकता था। इस दिशा में प्रयत्न किए गए थे परन्तु भारतीय धर्मनिरपेक्षता की दिशा विज्ञान और तर्क से हटकर सभी धर्मों के प्रति सद्भाव की ओर मुड़ गई और इससे इसके सकारात्मक विकास का आधार ही डगमगा गया। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल की 'धर्मनिरपेक्षता' का मौजूदा स्वरूप वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की ओर ही बढ़ा हुआ एक कदम है।

41.9 भारतीय धर्मनिरपेक्षता का वैधिक आधार

डॉ. ई. स्मिथ के अनुसार, धर्मनिरपेक्ष राज्य, "वह राज्य है जो धर्म को निजी और सामूहिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, एक व्यक्ति को बिना उसके धर्म-सम्बन्ध पर विचार किए नागरिक मानता है, जो संवैधानिक रूप से किसी धर्म विशेष से बंधा नहीं होता, और न किसी धर्म को प्रोत्साहित करता है, न किसी धर्म को बाधित करता है।"

आगे उसका कहना था :

> "धर्म निरपेक्ष राज्य एक व्यक्ति को किसी विशेष धर्म समूह का सदस्य मानने के बजाय एक नागरिक मानता है। नागरिकता की शर्तों की परिभाषा में धर्म का कोई स्थान नहीं होता और एक नागरिक के अधिकार और कर्तव्य उसके धार्मिक विश्वास से प्रभावित नहीं होते।"

राज्य की इस प्रकार की नीति का एक तार्किक परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक पद या किसी सरकारी सेवा में नियुक्ति पाना किसी व्यक्ति के धर्म पर निर्भर नहीं करता। स्मिथ ने भारतीय संविधान की कई धाराओं के आधार पर यह सिद्ध किया कि भारत पश्चिम की उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्परा जैसा ही धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

41.9.1 धार्मिक स्वतंत्रता : एक मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान के निर्माता प्रारम्भ से ही यह मानकर चले थे कि धर्म और उपासना की

स्वतंत्रता को भारत के प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकार के रूप में घोषित करने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को "सामाजिक प्रतिष्ठा और अवसर की समानता" प्रदान करने का पवित्र संकल्प व्यक्त किया गया है। भारतीय संविधान में धार्मिक भेदभाव न बरतने का सिद्धांत विशेष रूप से शामिल है। यह सिद्धांत आम तौर पर लागू होता है, और सार्वजनिक रोज़गार के क्षेत्र में विशेष रूप से। उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 15 (i) में कहा गया है :

"राज्य धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर, या इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरतेगा।"

अनुच्छेद 16 (i) में कहा गया है :

"राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति या रोज़गार पाने संबंधी मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता रहेगी।"

इसी प्रकार अनुच्छेद 25 (i) "अन्तकरण (Conscience) की स्वतंत्रता और स्वतंत्र व्यवसाय और धर्मपालन की स्वतंत्रता.......की गारंटी देता है। लेकिन भारत में कानून, राजनीति से धर्म को अलग रखने का कोई प्रावधान प्रस्तुत नहीं करता। यही कारण है कि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक पार्टियाँ राजनीति में सक्रिय रही हैं।

41.9.2 राज्य का दर्जा धर्म से ऊपर

हालांकि ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में धर्म की तुलना में राज्य को सर्वोच्च स्थान मिला हुआ है। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष स्वयं डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्ति ने कहा था : "किसी भी समुदाय के लोगों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे संसद की सार्वभौमिक अधिकार सीमा से बाहर हैं।" हालांकि भारतीय संविधान धार्मिक भेदभाव के किसी भी सिद्धांत के विरुद्ध बोलता है, परन्तु यह राज्य को दलित समुदाय (उदाहरण बतौर, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) के पक्ष में कानून बनाने से नहीं रोक सकता। यह विधि निर्माण "सकारात्मक पक्षपात" के सिद्धांत पर आधारित है। यह धर्मनिरपेक्षता की वैज्ञानिक भावना के अनुरूप भी है। इसी कारण वी.पी. लूथरा भारतीय राज्य को "न्याय प्रशासनवादी (Jurisdictionalist) के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय राज्य सभी धर्मों को समान दर्जा देता है, अन्तःकरण और उपासना की समान स्वतंत्रता प्रदान करता है, परन्तु धर्म के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी से पूरी तरह विमुख नहीं होता। यह धर्मों की गतिविधियों पर सर्तक निगरानी रखता है, और जब ज़रूरी हो तब हस्तक्षेप भी कर सकता है। धर्मनिरपेक्षता का यह वैधिक संवैधानिक आदर्श नेहरू युग (1947-64) में कमोबेश संतोषप्रद ढंग से काम करता रहा। इस काल में भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों के सामने भारतीय राज्य की नीति 'धार्मिक तटस्थता' की बनी रही।

बोध प्रश्न 3

1) स्वातंत्र्योत्तर काल में अपनाया गया धर्मनिरपेक्षता का आदर्श :
   i) मूल रूप से नेहरूवादी (आमूल परिवर्तनवादी) आदर्श था।
   ii) मूल रूप से गांधीवादी आदर्श था।
   iii) मूल रूप से गांधीवादी और नेहरूवादी आदर्शों का मिला-जुला रूप था।
   iv) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं।

2) भारतीय संविधान की उन दो मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए जो कानूनी तौर पर धर्मनिरपेक्षता की भावना को सुरिक्षत करती हैं।

....

....

....

....

3) जन विज्ञान धर्मनिरपेक्षता की समझ के प्रसार में जो भूमिका अदा कर सकता है, उस पर लगभग 50 शब्दों में टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

....

41.10 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप ने जाना कि :

- धर्मनिरपेक्षता उस पश्चिमी समाज के आधुनिक दृष्टिकोण के रूप में उभरी जो एक नए व्यापक सामाजिक ढांचे को अपना रहा था, जिसमें सामाजिक संगठन के प्राचीन और सर्वाधिक पिछड़े सिद्धांत यानी धर्म की भूमिका निरन्तर कम होती जा रही थी।
- जैसे-जैसे यूरोप में तर्क और बौद्धिकता को प्रमुखता मिलती गई वैसे-वैसे 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को विचारधारात्मक स्वरूप मिलता गया।
- धर्मनिरपेक्षता की पहचान धर्म से राज्य के अलगाव के रूप में बनती गई।
- भारत में धर्मनिरपेक्षता का विकास आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई मांगों के साथ हुआ। एक अखिल भारतीय आंदोलन के लिए धर्म और जाति की बाधाओं से निपटने की खातिर राष्ट्रवादियों द्वारा साधन और तरीके खोजने के प्रयास किए गए। इनमें से दो प्रमुख प्रयास गांधीवादी धर्मनिरपेक्षता और आमूल परिवर्तनवादी धर्मनिरपेक्षता के थे।
- भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन की धर्मनिरपेक्ष विरासत को अपना लिया। व्यवहार में जो धर्मनिरपेक्षता स्वीकार की गई वह गांधीवादी और आमूल परिवर्तनवादी आदर्शों के बीच एक समझौते के रूप में थी।
- स्वातंत्र्योत्तर काल के भारत के संविधान ने भारतीय धर्मनिरपेक्षता को कानूनी आधार देने के लिए राज्य से धर्म के अलगाव को धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के रूप में महत्व दिया।

41.11 शब्दावली

नया क्रांतिकारी बुर्जुआवर्ग (New revolutionary bourgeoisie) : ऐतिहासिक रूप से यूरोप के उस वर्ग के संदर्भ में उद्धृत जो पूर्व पूंजीवादी हितों के विरुद्ध संघर्ष में उभर कर आया। इसमें विभिन्न व्यवसायों में लगा मध्यवर्ग, उद्योग चलाने वाले, व्यापारी आदि उद्यमी शामिल थे।

बुद्धिवादी (Rationalist) : वे लोग जो बुद्धि को मानव अस्तित्व का आधार मानते हैं।

विचारधारात्मक (Ideological) : किसी विशेष विश्व दृष्टि से संबंधित उदाहरण के लिए, धर्मनिरपेक्षता आधुनिक विश्व दृष्टि का नया अंग बन गई जो समाज में बड़े पैमाने पर पूंजीवाद के उभरने के साथ ही उभरी।

संवैधानिक दर्शन (Constitutional Philosophy) : संविधान का निर्माण किया जाता है। है।

संस्थात्मक वैधता (Institutional Legitimacy) : एक संस्था द्वारा प्रदान की गई वैध मान्यता।

सामंतवाद विरोधी विद्रोह (Anti-feudal revolts) : यूरोप में आधुनिक व्यापक पूंजीवादी व्यवस्था के उभरने के दौरान मौजूदा सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए। ये विद्रोह नई व्यवस्था को रोकने या उसे स्थानीय स्तर तक सीमित रखने के दबावों के विरुद्ध हुए। क्योंकि आधुनिक उत्पादन, साधनों की प्रकृति बड़े पैमाने पर, उत्पादन की थी, इसलिए नई व्यवस्था की प्रकृति स्थानीयता जैसी सीमाओं को तोड़ने की थी। फ्रांसीसी क्रांति को उस समय का सबसे बड़ा सामन्तवादी विरोधी विद्रोह कहा जा सकता है।

भारत की कक्षबद्ध संस्कृति (Compartmentalist Culture of India) : जाति और धर्म की संस्थाओं की जकड़ जो भारतीय समाज को साफ़-साफ़ और गहराई से विभाजित करती है और अलग-अलग खानों में बांटती है। इसलिए हम भारत की कक्षबद्ध यानी खानों या कक्षों में विभाजित संस्कृति की बात करते हैं।

अज्ञेयवादी (Agnostic) : ऐसा व्यक्ति जो ईश्वर के अस्तित्व यानी ईश्वर है या नहीं के बारे में निश्चित नहीं होता।

बुद्धिजीवी वर्ग (Intelligentsia) : समाज का वह वर्ग जो व्यावसायिक रूप से अध्ययन, मनन और विचारों के विकास से संबंध रखता है।

बहुलवादी संस्कृति (Phiralist Culture) : भारत की बहुलवादी संस्कृति से तात्पर्य है भारत में बहुत सी सांस्कृतिक धाराओं का मौजूद रहना।

41.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (iii) 2) (i)
3) विशेष रूप से देखिए भाग 41.6 । आपकें उत्तर में आधुनिक समाज की सभी गतिविधियों में धर्म और राजनीति के अलगाव का उल्लेख होना चाहिए।

बोध प्रश्न 2

1) (iii)
2) देखिए उपभाग 41.7.3 और 41.7.4 आपके उत्तर में यह बात प्रमुखता से आनी चाहिए कि जन संघठन के लिए लोकधर्म के प्रयोग की आवश्यकता गांधी जी के सामने कैसे आई। प्रारंभिक राष्ट्रवादी जनता को संघठित करने में सफल होने के लिए धर्म और परम्परा के घेरे में पहले ही आ गए थे।

बोध प्रश्न 3

1) (iii)
2) भाग 41.9 देखिए।
आपके उत्तर में धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार, सभी धर्मों की समानता और राज्य के धर्म से ऊपर होने के प्रावधान का विशेष रूप से उल्लेख होना चाहिए।

3) उपभाग 41.8.3 देखिए।
आपके उत्तर में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि जन विज्ञान किस तरह दैनिक जीवन तथा अन्य गतिविधियों का वैज्ञानिक अर्थों में खुलासा करके रूढ़ियों और अंधविश्वासों को दूर करने में सहायक हो सकता है। इसको स्पष्ट करने के लिए अपने दैनिक अनुभवों पर ध्यान दीजिए और उन पर विचार कीजिए।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

श्री कृष्ण महेश्वरी : **भारत में आयोजन तथा आर्थिक विकास**, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय दिल्ली।
एम.एल. श्रीनिवास : **आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन**, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
वेद ढान सुधीर : **भारत की विदेश नीति : बदलते संदर्भ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
बी. बी. तायल : **भारतीय शासन और राजनीति**, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
सुनील कुमार सेन : **भारत का कृषि आंदोलन**, के.पी. बागची एंड कंपनी कलकत्ता।